

अवस्थात्रय विचार



ध्यान दें:

दर्शन आस्तिक तथा नास्तिक भेद से दो प्रकार के होते हैं। आस्तिक दर्शनों में सबसे अन्यतम वेदान्त दर्शन होता है। वेदों का अन्तिम भाग ही वेदान्त कहलाता है। वेद कर्मकाण्ड तथा ज्ञान काण्ड के रूप में दो प्रकार का होता है। कर्मकाण्ड में यगादि कर्मों का विचार तथा ज्ञानकाण्ड में ब्रह्म का विचार किया गया है। वहाँ पर ब्रह्मविचार परक ज्ञानकाण्ड का विचार वेद के अन्तिम भाग में है। उसी अन्तिम भाग को वेदान्त के नाम से जाना जाता है। वेदान्त यह मुख्य रूप से उपनिषदों का ही नाम है। उपनिषदों के तात्पर्य का विचार जिन ग्रन्थों के द्वारा होता है वे वेदान्त पद के द्वारा बोध्य होते हैं। जैसे ब्रह्मसूत्र, भगवद्गीता तथा उनके भाष्य आदि हैं। वेदान्त से तात्पर्य उपनिषद् प्रमाण तदुपकारी शारीरिक सूत्रादि जो वेदान्त शास्त्र में कहे गये हैं। मत भेद के द्वारा वेदान्त बहुत प्रकार से व्यवहार में लाया जाता है। जिसमें अद्वैत, भेदाभेद, विशिष्टाद्वैत, द्वैत, शुद्धाद्वैत इत्यादि प्रमुख सम्प्रदाय होता है। इनके क्रमानुसार ये आचार्य हैं शङ्कराचार्य, भास्कराचार्य, रामानुजाचार्य, माध्वाचार्य तथा वल्लभाचार्य।



उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर के आप सक्षम होंगे;

- वेदान्त का सामान्य ज्ञान प्राप्त करने में;
- अद्वैत वेदान्त शब्द के विशेषार्थ का ज्ञान प्राप्त करने में;
- वेदान्त के इतर विभागों का परिचय प्राप्त करने में;
- वेदान्त प्रतिपाद्य मुख्यतत्वों का ज्ञान प्राप्त करने में;
- शङ्कराचार्य आदि आचार्यों का सामान्य परिचय प्राप्त करने में;
- अवस्थात्रय के विषय में सामान्य बोध प्राप्त करने में;
- आत्म का चतुष्पादत्व का सम्यक् अवगमन प्राप्त करने में;
- विश्व वैश्वानरादि स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करने में;

अवस्था त्रय विचार



ध्यान दें:

17.1) अद्वैतशब्दार्थ

जहाँ पर द्वैत नहीं होता है उसका अर्थ अद्वैत होता है। उस अद्वैत शब्द के अर्थ विशेष का विचार किया जाता है। जो दोनो से होता है वह अद्वैत कहलाता है। तथा जीव तथा जगत् इन दोनों से विशिष्ट जगत् अद्वैत कहलाता है। और अद्वैत का भाव ही द्वैत है। तथा द्वैत का अभाव अद्वैत है। जो द्वैत नहीं होता है वह अद्वैत कहलाता है। इस प्रकार से जो ब्रह्म का जीव तथा जगत् का विशिष्टत्व नहीं मानते हैं वे अद्वैतवादी कहलाते हैं।

द्विधेतं द्वीतमित्याहुस्तद्भावो द्वैतमुच्यते।

तन्निषेधेन चाद्वैतं प्रत्यग् वस्त्वभिधीयते॥ (बृहदारण्यकभाष्यवार्तिकम्-4.3.1907)

इस प्रकार से शुद्ध चैतन्य अद्वैत होता है। यहाँ पर सिर्फ चैतन्य का ही अवधान किया गया है। ब्रह्म सत्य है तथा जगत् मिथ्या है तथा जीव ब्रह्म के अलावा और कुछ भी नहीं यह अद्वैत का प्रतिपाद्य विषय है। दर्शनों में वेदान्त का तथा वहाँ पर भी अद्वैत का स्थान सबसे अधिक प्रधान है।

17.2) आत्मा के तीन रूप

वेदान्त शास्त्र का मुख्य विषय जीव तथा ब्रह्म का ऐक्य है। अथवा जीवात्मा का तथा परमात्मा का अभेद ज्ञान है। उस अभेद का प्रतिपादन करने के लिए शास्त्र में अनेक उपाय स्वीकार किये हैं। वहाँ पर एक उपाय के प्रदर्शन के लिए यह विचार स्वीकार किया गया है। परमात्मा के अधिदैवत सविशेष तीन रूप होते हैं। उसी प्रकार जीवात्मा के अध्यात्म सविशेष तीन रूप होते हैं। अधिदैवत इसका देवतात्मक अर्थ होता है। अध्यात्म इसका जीवात्मक अर्थ होता है। और अधिदैवत के तीन रूप होते हैं- ईश्वर, हिरण्यगर्भ तथा विराट। और अध्यात्म के भी विश्व तैजस प्राज्ञ भेद से तीन रूप होते हैं। जिसमें वैश्वानर का स्थान जाग्रत होता है। तैजस का स्थान स्वप्न होता है तथा प्राज्ञ का स्थान सुषुप्ति होता है।

17.3) तीन अवस्थाएँ

शरीरस्थ जीवात्मा की तीव्र अवस्थाएँ होती हैं। वो है जाग्रत, स्वप्न तथा सुषुप्ति। ये अवस्थाएँ परस्पर विलक्षण होती हैं। जाग्रत अवस्था में स्वप्न नहीं होता है। स्वप्नावस्था में जाग्रत अवस्था नहीं होती है। और ये दोनों सुषुप्ति अवस्था में नहीं होती हैं। निरुपाधिक ब्रह्म का स्वरूप जानने के लिए ही इन अवस्थाओं का शास्त्रों में निरूपण किया है। सर्वोपाधिविर्वर्जित ब्रह्म इन अवस्थाओं से भी मुक्त होता है। इसे प्रतिपादित किया जाता है। इस प्रकार अवस्थाओं से भिन्न और कोई अवस्था जीव की नहीं होती है। और इन अवस्थाओं का भी शरीरस्थ जीव ही अनुभव करता है। अब प्रश्न करते हैं की यह जीव कौन है तथा अवस्थाएँ कौन-कौन सी होती हैं।

17.4) जीवस्वरूप

जीव अन्तः करण अवच्छिन्न चैतन्य को जानना चाहिए। ब्रह्मादि के समान जीव भी विभु, नित्य तथा सन्मात्र चैतन्य होता है। वह ही इस नामरूपात्मक जगत् का आधार भूत होता है। इन्द्रियमन अहङ्कार आदि उपाधियों के द्वारा अलग अलग अवच्छिन्न आत्मा ही जीव कहलाती है। आत्मा सत् तथा एक होती है फिर भी उपाधि भेद से अनेक जीव स्वरूप से प्रतीत होती है। इस प्रकार से अकर्ता आत्मा भी कर्ता हो जाता है। अभोक्ता आत्मा भोक्ता हो जाता है। सुखी दुःखी हो जाता है। उसके कर्तृत्व भोक्तृत्व आदि उपाधिकृत होते हैं, न की वास्तविक रूप में। जीव परमात्मा अंश नहीं होता है। और उसका परिणाम भी

नहीं होता है। उसकी केवल विवर्तरूप प्रतीति मात्र होती है। इसलिए जीव ही संसारी होता है। उसी के बन्धन तथा मोक्ष होते हैं। जीव ही पाप पुण्य आदि को उपार्जित करता है तथा उनके फलों को भोगता है। जीव का जीवत्व आग में उष्णत्व के समान स्वभाविक नहीं है अपितु कल्पित होता है। मोह के अन्धकार में भ्रान्ति बुद्धि से वह अपने आप को जीव रूप में मानने लगता है। तत्त्वमसि आदि के ज्ञान के द्वारा जीव अज्ञान का विनाश करके अपने स्वरूप को प्राप्त करता है। वह ब्रह्म को जानने वाला बनकर ब्रह्मस्वरूप हो जाता है इस प्रकार से तैत्तिरीय श्रुति में कहा गया है।



पाठगत प्रश्न 17.1

1. वेदान्त किसे कहते हैं?
2. वेद कितने प्रकार के होते हैं?
3. ज्ञानकाण्ड का दूसरा नाम क्या है?
4. अद्वैत वेदान्त के प्रवर्तक कौन है?
5. द्वैत वेदान्त के प्रवर्तक कौन हैं?
6. विशिष्टाद्वैत के प्रवर्तक कौन है?
7. वेदान्त का मुख्य विषय क्या है?
8. आत्मा के कितने रूप होते हैं?
9. जीव की कितनी अवस्थाएँ होती हैं?
10. जीव किसे कहते हैं?

17.5) जाग्रदवस्था

जागरण इन्द्रियों के द्वारा अर्थोपलब्धि को कहते हैं। इन्द्रियाँ ज्ञान तथा कर्म के भेद से दस होती हैं। उन इन्द्रियों के द्वारा विषयों के साथ सन्निकर्ष प्राप्त करके जीव जब सुख तथा दुःख को प्राप्त करता है तब वह जीव की जाग्रत अवस्था होती है, इस प्रकार से कह सकते हैं। जाग्रत अवस्था में जीव के स्थूल विषय भोग होते हैं। जाग्रत अवस्था में जीव जिन-जिन विषयों का भोग करता है, वे विषय उसके चित्त में वासना के रूप में स्थित हो जाते हैं। लौकिक तथा वैदिक कर्मों के सुख दुःखादि फलों को भोगने के लिए धर्म तथा अधर्म में, बन्धन तथा मोक्ष में ये वासना युक्त जाग्रत ही आश्रय कहलाते हैं।

जाग्रत अवस्था में ही प्रमातृ, प्रमाण, प्रमेय आदि व्यवहार होते हैं। वहाँ प्रमाणों के द्वारा जो अर्थ को प्रमाण के द्वारा प्राप्त करता है वह प्रमाता कहलाता है। जिससे प्रमाणित करता है वह प्रमाण कहलाता है। जिस के द्वारा प्रमाण किया जाता है वह प्रमेय कहलाता है। प्रमाता जीव चेतन होता है। जाग्रत अवस्था में जीव का वैश्वानर इस प्रकार का नाम होता है।

17.6) वैश्वानर

आत्मा के चार पाद होते हैं। यह आत्मा चार पैरों वाली होती है इस प्रकार का माण्डूक्य वाक्य ही वहाँ पर प्रमाण होता है। जिनके द्वारा ब्रह्म तथा आत्मा का ऐक्य समझा जाता है वह पाद विश्वादि कहलाते हैं। विश्व, तैजस, प्राज्ञ तथा ईश्वर इस प्रकार से चार पाद होते हैं।



ध्यान दें:

अवस्था त्रय विचार



ध्यान दें:

विश्व ही वैश्वानर होता है। विश्व के नरों को ले जाने के कारण इसका नाम वैश्वानर है। जाग्रत अवस्था में विद्यमान आत्मा प्रथम पाद के रूप में होता है। बाह्यविषयों में ही इसकी प्रज्ञा अवभासित होती है। इसलिए यह बहिष्प्रज्ञ भी होता है। इस प्रकार से यह जागरित सात अङ्ग वाला उन्नीस मुख वाला स्थूलभुक् होता है। इसलिए श्रुतियों में कहा है

जागरितस्थानो बहिष्प्रज्ञः सप्ताङ्गो एकोनविंशतिमुखः

स्थूलभुग्वैश्वानरः प्रथमः पादः इति।

मूर्धा सुतेजा, चक्षुर्विश्वरूप, प्राण पृथग्वर्त्मात्म, सन्देह बहुल, वस्तियेवरयि, पृथ्वी दोनों पैर, मुख आहवनीय अग्नि इस प्रकार से वैश्वानर के सात अङ्ग होते हैं। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच प्राण, बुद्धि, मन, अहङ्कार तथा चित्त इस प्रकार से इसके उन्नीस मुख होते हैं। इनेक द्वारा ही वैश्वानर शब्दादि स्थूल विषयों का भोग करता है। इसके द्वारा ही द्वितीय पाद की प्राप्ति होती है इस कारण से यह वैश्वानर प्रथम पाद होता है। जाग्रत अवस्था में स्थूलशरीराभिमानी यह विश्व होता है।

17.7) स्थूलशरीर

जीव उपाधि तन्त्र होता है। वहाँ पर शरीर एक उपाधि होता है। शरीर तीन प्रकार होता है। स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर, तथा कारण शरीर ये तीनों आत्मा में कल्पित होते हैं। वहाँ पर अज्ञान कारण होता है। जाग्रत अवस्था में स्थूल शरीर का प्राधान्य होता है। स्थूल शरीर किसे कहते हैं यह जिज्ञासा होती है। तो कहते हैं की आँख के द्वारा दिखाई दिये जाने वाले हाथ पैर मस्तकादि इस स्थूल देह के अंश होते हैं। मज्जास्ति मेद चर्म, रक्त मांसादि उसके ही अंश होते हैं इसलिए कहा गया है

मज्जास्तिमेदः पलरक्तचर्मत्वगाह्वयैर्धातुभिरेभिरन्वितम्

पादारुवक्षो भुजपृष्ठमस्तकैरंगैरुपांगैरुपयुक्तमेतत्।

अहं ममेति प्रथितं शरीरं मोहास्पदं स्थूलमितीर्यते बुधैः॥74॥ (विवेकचूडामणिः)

खाये गये अन्न के स्थूल मध्यम तथा सूक्ष्म भेद से तीन भाग जानना चाहिए। तेज तथा घृतादि का जो मध्यम भाग होता है वह मज्जा होता है। उसका अन्तिम भाग अस्थि होता है। उसका पूर्व परिणाम मेद होता है। खाये हुए अन्न का मध्यम भाग रक्त बनता है। पीये हुए जल का मध्यम भाग चर्म तथा स्थूलावरण होता है। त्वच् सूक्ष्मावरणों को अन्दर की धातु, नाडी आदि सप्तावरणों को ढककर रखती है। इस प्रकार के अवयवों से युक्त स्थूलशरीर होता है। स्थूल शरीर आत्मा का नहीं होता है। फिर अज्ञान के कारण आत्मा इसे स्वयं का मानता है। जिसे उनमें उसे मैं मोटा हूँ, मैं पतला हूँ, मैं सुन्दर हूँ इस प्रकार का इस प्रकार के मैं रूपी अभिमान होता है। और मैं ब्राह्मण हूँ, मैं क्षत्रिय हूँ, इस प्रकार के विशेष रूप से होते हैं। वहाँ पर मेरे हाथ, मेरे पैर, मेरा शरीर इस प्रकार का ममता वाला अभिमान भी होता है। अज्ञानप्रयुक्त अध्यास से ही मैं, यह, मेरा, इस प्रकार का लोक व्यवहार होता है।

स्थूल शरीर जीव का भोगायतन होता है, जाग्रत काल में वैश्वानर दिग्वातार्कवरूणाश्रवों के द्वारा क्रम से नियन्त्रित श्रोत्रादि पाँच इन्द्रियों के द्वारा क्रम से शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदि स्थूल विषयों का अनुभव करता है। अग्नि, इन्द्र, उपेन्द्र, यम, प्रजापतियों के द्वारा क्रम से नियन्त्रित वागादि पाँच इन्द्रियों से क्रम से वचन, दान, गमन, विसर्ग, आनन्द, स्थूल विषयों का क्रम से अनुभव करता है। चन्द्र, चतुर्मुख, शङ्कर, तथा अच्युत के द्वारा क्रम से नियन्त्रित मन बुद्धि अहङ्कार तथा चित्त के माध्यम से अन्तरिन्द्रियचतुष्कोण से क्रम से सङ्कल्प विकल्प निश्चय अहङ्कार तथा चित्त स्थूल विषयों का वैश्वानर अनुभव करता है। इस प्रकार से वेदान्तसार में कहा गया है। वहाँ पर स्थूलभुक् वैश्वानर ही प्रमाण होता है।



पाठगत प्रश्न 17.2

11. जागरण किसे कहते हैं?
12. स्थूल विषयोपभोग कब होता है?
13. प्रमाता कौन होता है?
14. आत्मा के चार पैर कौन-कौन से हैं?
15. जागरितस्थान कौन-सा है?
16. तीन प्रकार के शरीर कौन-कौन से हैं?
17. जीव का भोगायतन क्या होता है?

17.8) स्वप्न

स्वप्न जागरित संस्कार प्रत्यय सविषय होता है। जाग्रत अवस्था से अत्यन्त भिन्न कोई अवस्था स्वप्नावस्था कहलाती है। यहाँ पर इन्द्रियों के मन में लीन हो जाने से उनकी प्रवृत्ति नहीं होती है। इन्द्रियों के अभाव में स्वप्नस्थ विषयों का दर्शन किस प्रकार से सम्भव होता है यह जिज्ञासा उत्पन्न होती है। तो कहते हैं की साक्षी के द्वारा। अन्तः करणोपहित चैतन्य साक्षी कहलाता है। तब इन्द्रियों के उपरमित सत्य होने पर भी मनस की प्रवृत्ति नहीं होती है। इसलिए जाग्रत कालीन स्थूल विषयों से इन्द्रिय उपरमित होने पर भी मन उन विषयों का फिर भोग करता है। भले ही स्वप्नकाल में स्थूल विषय नहीं होते हैं, फिर भी सूक्ष्म विषय तो होते ही हैं। इसलिए कहा गया है

**इन्द्रियाणाम् उपरमे मनोऽनुपरतं यदि सेवते
विषयानेव तद्विद्यात् स्वप्नदर्शनम्॥**

स्वप्न काल में प्राण के सत्त्व होने से शरीर की जड़ता नहीं होती है। स्वप्नकाल में भी जाग्रतकाल समान ही सभी प्रकार के व्यवहार सम्भव होते हैं। वहाँ पर रथ, रथचालक अश्व तथा मार्गादि होते हैं। कैसे होते हैं तो कहते हैं कि जीव इन सभी की सृष्टि करता है। इसलिए स्वप्नलोक जीव की सृष्टि है इस प्रकार से श्रुतियाँ कहती हैं।

न तत्र रथा रथयोगानपन्थानो भवन्त्यथ रथयोगान् पथः सृजते - (बृह. 4.3.10)

स्वप्न विषय जाग्रत काल के समान परमार्थ नहीं होते हैं अपितु मिथ्या ही होते हैं। न परमार्थगन्धोऽप्यस्ति। (सू.भ.-3.2.3) इसलिए वहाँ पर क्रियमाण पुण्य तथा पाप के द्वारा जीव का सम्बन्ध ही नहीं होता है। भले ही स्वप्न जाग्रत अवस्था में अनुभूत विषयों की ही स्मृति होती है। पहले देखी गई स्मृति ही प्रायः स्वप्न होते हैं। (बृ.सू.भा. 4.3.9) इस जन्म में अनुभूत विषयों का ही स्वप्न में दर्शन होता है केवल ऐसा नहीं मानना चाहिए अपितु इसके अतिरिक्त यहाँ अनुभूत विषय के साथ-साथ परलोकस्थ विषयों का भी स्वप्न में दर्शन होता है। भले ही परलोकस्थ सुख दुःखों का साक्षात् अनुभव होता है फिर भी उनका दर्शन तो होता है इस प्रकार से सभी का अनुभव है। स्वप्न में अनुभूत अश्वगजादि विषय प्रतिभासिक होते हैं। वे जब प्रतिभास के रूप में होते हैं। स्वप्न स्वप्नकाल में सत्य के समान लगता है तथा जगने पर असद् हो जात है। जैसे स्वप्नकाल में मन से कल्पित सुख दुःख हेतु वस्तु सत्य के समान लगते हैं तथा प्रबोध होने पर असत् हो जाते हैं। उसी प्रकार अज्ञान काल में यह जगत् द्वैत इस प्रकार से सत्य के समान अनुभूत होकर के सर्व व्यवहारास्पद होकर के सुखादुःखादि का अनुभव करवाकर के



ध्यान दें:

अवस्था त्रय विचार



ध्यान दें:

आत्मप्रबोध होने पर निश्शेष होकर निवर्तित हो जाता है। वस्तुतः जाग्रत प्रपञ्च मिथ्या होता है। लोकों का वैसा अनुभव नहीं होता है। शास्त्राचार्यों के उपदेश के द्वारा यह सिद्ध है लेकिन परोक्षानुभव तो कुछ को ही है। स्वप्नविषय वैसा नहीं होता है उसका मिथ्यात्व सभी को समझ में आता ही है। स्वप्नस्थ विषयों का प्रतीतिकालमात्रसत्ताकत्व होने से उनका प्रबोध काल में अनुभव नहीं कर सकते हैं। स्वप्न में कोई अपने को राजा के रूप में देखता है। लेकिन जगने पर तो वह दरिद्र ही होता है न की राजा। उसी प्रकार स्वप्नस्थ विषय क्षणिक होते हैं न कि दीर्घ कालिक। उसी प्रकार जाग्रतप्रपञ्च भी स्वप्न के समान ही देखना चाहिए।

17.9) तैजस

तैजस आत्म का दूसरा पाद होता है। तेजोमय अन्तःकरण से उपहित जीव का तैज इस प्रकार का नाम होता है। यह तेजोमय तथा वासनामय होता है। जाग्रत अवस्था में अन्तःकरण की वृत्ति के द्वारा जो जो शब्दादि विषय जीव के स्थूलरूप के द्वारा अनुभूत होते हैं उनके संस्कार सूक्ष्म रूप से मन में रहते हैं उन्हीं का नाम वासना होता है। तैजस का स्थान स्वप्न होता है। इसलिए यह स्वप्न स्थान इस प्रकार से भी जाना जाता है। स्वप्न सूक्ष्म शरीराभिमानी तैजस होता है। स्वप्न में वासना रूप के द्वारा प्रज्ञा स्थिर होती है वैश्वानर स्थूल विषयों का साक्षात् अनुभव करता है जिससे उसकी प्रज्ञा भी स्थूल हो जाती है। लेकिन स्वप्न काल में जाग्रत कालीन वासनाभूत सूक्ष्म विषयों का अनुभव करता है इस हेतु से तैज की प्रज्ञा सूक्ष्म हो जाती है। उसकाल में सूक्ष्म विषयों का अनुभव होता है इसलिए वह प्रविविक्त भुक् इस प्रकार से कहलाता है। जाग्रतकाल के समान ही स्वप्नस्थ भोग स्थूल नहीं होते हैं। उनसे अत्यन्त विविक्त होते हैं इस प्रकार से वे प्रविविक्तभुक् कहलाते हैं। इस प्रविविक्त का आरारंतर यह भी नामान्तर है। स्वप्नलोक में जीव के लिए अन्न का अतिसूक्ष्मांश ही आहार होता है। अन्न का मध्यम अंश ही अत्यन्त विविक्त होता है। इसलिए यह तैजस का प्रविविक्ताहारतर होता है इस प्रकार से बृहदारण्य में कहा है। (बृ- 4.2.3)।

स्वयं के द्वार सम्पादित वासनाओं के अनुरोध से मन के द्वारा अन्दर ही प्रज्ञारूप में जीव की उत्पत्ति होती है। इसलिए यह तेज अन्तःप्रज्ञः होता है। इस प्रकार से सात अङ्ग तथा उन्नीस मुख वाला यह प्रविविक्तभुक् होता है। वैश्वानर के जैसे सात अङ्गादि वर्णित है वैसे ही इसको भी देखना चाहिए। इसलिए श्रुति में कहा है।

**स्वप्नस्थानोन्तःप्रज्ञः सप्ताङ्ग एकोनविंशतिमुखः
प्रविविक्तभुक् तौजसो द्वितीयः पाद इति।**

17.10) सूक्ष्मशरीर

जाग्रत होने पर स्थूलशरीर अच्छी प्रकार से अवभास युक्त होता है। तो स्वप्नकाल में किस शरीर का भास होता है यह जिज्ञासा होती है तब उत्तर देते हैं की सूक्ष्म शरीर का भास होता है। सूक्ष्म शरीर क्या होता है। तब कहते हैं की सूक्ष्म शरीर सप्तदश अवयवों वाला लिङ्ग शरीर होता है। जो अनभिज्ञों के द्वारा इस प्रकार से कहा गया है की मुख्य तो सत्रह रूपों में ही होता है। इसके द्वारा प्रत्येक आत्मा को जाना जाता है इसलिए इसे लिङ्ग कहते हैं। अवयव से तात्पर्य है पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, बुद्धि मन तथा पाँच वायु होते हैं। शङ्कराचार्य ने विवेकचूडामणि में इसे इसप्रकार से कहा है-

**वागादिपञ्च श्रवणादिपञ्च
प्राणादिपञ्चाध्रमुखानि पञ्च।**

बुद्ध्याद्यविद्यापि च कामकर्माणि

पुर्यष्टकं सूक्ष्मशरीरमाहुः॥ (वि.चू. 98)

ज्ञान का साधन करने वाली इन्द्रियाँ ज्ञानेन्द्रियाँ कहलाती हैं। वे हैं श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, तथा घ्राण। इनेक इसी क्रम से शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध ये विषय होते हैं। कर्मों को साधने वाली इन्द्रियाँ कर्मेन्द्रियाँ कहलाती हैं। वे हैं वाक्, पाणि, पाद, पायु तथा उपस्था। इनके क्रमशः विषय हैं वचन, दान, गमन, विसर्ग तथा आनन्द। वाक् इन्द्रिय वचन साधती है। वाक् इन्द्रिय के बिना हम लोग कहने में असमर्थ होते हैं। पाणि आदान का साधन करती है पाणि के बिना किसी भी वस्तु का आदान सम्भव नहीं होता है। पाद इन्द्रिय गमन साधती है। पादेन्द्रिय के बिना गमन क्रिया सम्भव नहीं है। पायु इन्द्रिय विसर्जन करती है। शरीरस्थ मल का विसर्जन इसी पायु इन्द्रिय के द्वारा ही होता है। सुख साधक इन्द्रिय उपस्थ होती है तथा यह मूत्रविसर्जनसाधक भी होती है। इस प्रकार से यहाँ पर प्रश्नोपनिषद् का वाक्य है

वाक् च वक्तव्यं च हस्तौ च दातव्यं च उपस्थश्चानन्दयितव्यञ्च पायुश्च विसर्जयितव्यञ्च पादौ गन्तव्यञ्च। इति। (प्र.उप. 4.8)

अब बुद्धि तथा मन की क्या गति है इस पर भी विचार करते हैं। बुद्धि निश्चयात्मिका अन्तःकरणवृत्ति होती है। मन सङ्कल्प विकल्पात्मिका अन्तःकरण वृत्ति होती है। चित्त के तथा अहङ्कार के इनके ही अन्दर होने से उन दोनों की अलग से विचार अपेक्षित नहीं होता है। जिसे वेदान्त परिभाषा में इस प्रकार से कहा गया है।

मनो बुद्धिरहंकारश्चित्तं करणमान्तरम्।

संशयो निश्चयो गर्वः स्मरणं करणमान्तरम्। इति।

अन्तःकरण चार प्रकार का होता है। मन, बुद्धि, अहङ्कार तथा चित्त के रूप में। वहाँ पर संशय मन का विषय होता है, निश्चय बुद्धि का विषय होता है। गर्व, अहङ्कार का तथा स्मरण चित्त का विषय होता है। अनुसन्धानात्मक अन्तःकरण की वृत्ति चित्त होता है। अभिमानात्मक वृत्ति वाला अहङ्कार होता है। स्मृति अनुभव जन्य होती है। अनुभव निश्चयात्मक होता है। इसलिए निश्चयात्मा बुद्धि में ही चित्त का अन्तर्भाव होता है। उसी प्रकार अहङ्कार के सङ्कल्पविकल्पात्मक होने से मन के अन्दर अन्तर्भाव होता है।

इसके अलावा पाँच वायु का वर्णन है। प्राण, अपान, व्यान, उदान तथा समान पाँच वायु होती है। प्राण सबसे पूर्व चलने वाला नासाग्रवर्ती होता है। अपान आवागमन वाला पायु आदिस्थानवर्ती होता है। व्यान विश्वगमनवान् होने से अखिलशरीरवर्ती होता है। उदान कण्ठस्थानीय ऊर्ध्वगमनवाला उत्क्रणवायु होता है। समान शरीर के मध्य में पीतान्नादि समीकरण कारक होता है इस प्रकार से वेदान्त सार में कहा गया है। विवेकचूडामणी में इस प्रकार से कहा गया है

प्राणापानव्यानोदानसमानाः भवत्यसौ प्राणः।

स्वयमेव वृत्तिभेदाद् विकृतिभेदात् सुवर्णसलिलादिवत्। (वि.चू. 97)

इस प्रकार से पूर्वोक्त सप्तदश वायु वाले इस सूक्ष्म शरीर का भान स्वप्न में होता है। इसलिए इस शरीर की विभक्त्यवस्था तथा भेदकावस्था स्वप्न में होती है। यहाँ स्थूलदेह के अभाव से सूक्ष्मदेह में अभिमान होता है।



ध्यान दें:

अवस्था त्रय विचार



ध्यान दें:

17.11) प्राज्ञ

प्राज्ञ आत्मा का तृतीय पाद होता है। व्यष्ट्यज्ञानोपहित चैतन्य प्राज्ञ कहलाता है। यह सुषुप्तिकारण शरीरा भिमानी होता है। जो अच्छी प्रकार से अज्ञ है वह प्राज्ञ कहलाता है। एकाज्ञानावभासकत्व से इसका प्राज्ञत्व होता है। प्राज्ञ स्थान सुषुप्ति अथवा गाढनिद्रा का होता है। सुषुप्ति अवस्था में विद्यमान आत्मा प्राज्ञ होती है, सुषुप्तिकाल में स्थूल विषय तथा सूक्ष्म विषय नहीं होते हैं। केवल अज्ञान ही अवभासित होता है। इसलिए वह अज्ञानमात्र साक्षी होता है। अज्ञानावभासकत्व से इस प्राज्ञ का नाम कुछ लोग कारण शरीराभिमानी प्राज्ञ मानते हैं। कारण शरीर का वर्णन आगे होगा कारण शरीर में अभिमान इस तादात्म्य अध्यास से अहम् इस प्रकार का अज्ञान वाला जीव होता है। अविनाशीस्वरूप अनुभवरूप प्राज्ञ जिसकी होती है वह प्राज्ञ होता है तथा कुछ के मत में प्राज्ञ ही प्राज्ञ होता है।

अविद्यावशगस्त्वन्यस्तद्वैचियादनेकथा।

सा कारणशरीरं स्यात्प्राज्ञस्तत्राभिमानवान्॥ (पञ्चदशी-1.17)

सुषुप्ति में प्राज्ञ आत्मा ऐक्य को प्राप्त कर लेती है। सत्ता सौम्य सम्पन्न होता है जब वह सोया हुआ रहता है, जिससे इसका स्वपिति इस प्रकार का नाम छान्दोग्योपनिषद् में है। स्वपिति यह इस जीव का लोकप्रसिद्ध नाम होता है। जाग्रत होने पर ही जीव की उपाधि अन्तःकरण होता है। इसलिए वह अन्तःकरणोपाधिक होता हुआ विषयों को ग्रहण करता है। स्वप्न में तद्वासनाविशिष्ट होता हुआ स्वप्न देखता हुआ मन शब्द वाच्य होता है। उसकी दोनों उपाधियाँ सुषुप्ति में नहीं होती हैं। इसलिए तदुपाधिकृत विशेष भी नहीं होता है। इसलिए आत्मा में उसका लय होता है यह इसका तात्पर्य है। उससे आनन्द का अनुभव होता है। इसलिए यह जीव तब आनन्दभुक् होता है। आनन्द का भोग करने वाला आनन्दभुक् कहलाता है। आनन्द स्वरूपान्द होता है। सुषुप्तिस्थान एकीभूत प्रज्ञानघन चेतोमुख प्राज्ञस्तृतीय इस प्रकार से आनन्दभुक् माण्डुक्योपनिषद् में कहा गया है। आनन्द के भोगार्थ उसकी अन्तःकरण वृत्ति नहीं होती है इस प्रकार की शङ्का नहीं करना चाहिए। वहाँ पर उसके अभाव में अज्ञावृत्ति इस प्रकार से होती है। उसके जडत्व होने पर चैतन्य के द्वारा वह प्रदीप्त होती है। और चैतन्यप्रदीप्त अतिसूक्ष्म अज्ञानवृत्ति के द्वारा आनन्द का अनुभव होता है।

17.12) सुषुप्ति

गाढनिद्रा ही सुषुप्ति कहलाती है। सुषुप्ति अर्थात् सभी विषयों के ज्ञान का अभाव। जगत् प्रपञ्च से तथा स्वप्न प्रपञ्च अत्यन्त भिन्न सुषुप्ति को जानना चाहिए। इसमें स्थूलविषय तथा सूक्ष्म विषय नहीं होते हैं तथा विषयों का भान भी नहीं होता है। यह इन्द्रियों तथा मन से भी परम होती है।

प्रबोध काल में जीव स्थूल सूक्ष्म शरीर द्वारा तथा स्वप्न में अन्तःकरण के द्वारा भोगों का अनुभव करता है। यहाँ पर तो जीव अत्यन्त शान्ति का अनुभव करता है। जैसे पक्षी बहुत दूर तक उड़कर के थकान के कारण विश्रान्ति के उद्देश्य से अपने घोंसले में आकर के प्रवेश करते हैं, उसी प्रकार जीव भी अन्यत्र दोनों अवस्थाओं में अपने कर्म के द्वारा प्रयास से थककर विश्रान्ति के लिए सुषुप्ति को प्राप्त करता है। जिसे श्रुतियों में इस प्रकार से कहा गया है-

तद्यथास्मिन्नाकाशे श्येनो वा सुपर्णो वा विपरिपत्य श्रान्तः संहत्य पक्षौ संलयायैव ध्रियते एवमेवायं पुरुष एतस्मा अन्ताय धावति। (बृह.भा. 4.3.19)

पक्षी ताप को झेलने से तथा उड़ने की थकान को दूर करने के लिए जिस प्रकार से अपने घोंसले में आते हैं उसी प्रकार जाग्रत अवस्था में तथा स्वप्नावस्था में कार्यकरण संयोग क्रियाफल के द्वारा जो

संयुज्मान श्रम होता है। उस प्रकार के श्रम का निवारण करने के लिए जीव अपने आश्रय स्थान सुषुप्ति की ओर जाता है। सर्व संसार धर्म विलक्षण सर्व क्रिया कारक फलायासशून्य जो आत्मा होती है वह आत्मस्वरूप में प्रवेश करता है, इसका इस प्रकार का तात्पर्य है। स्वप्न के अभाव से जो निद्रा होती है वह ही जीव की सुषुप्ति अवस्था होती है। जाग्रत तथा स्वप्न में मन चञ्चल हो जाता है और सुषुप्ति में वह निश्चल होता है।

इसका अन्यन्त आश्चर्य क्या है तो कहते हैं कि बिना पूछे ही किसी का सुषुप्तिकालीन अनुभव जान जा सकता है। लेकिन जाग्रत तथा स्वप्नावस्था में ऐसा नहीं होता है। जाग्रत काल में तो क्या अनुभूत किया गया है इस प्रकार से पूछने पर ही जाना जा सकता है। जाग्रत काल में कोई रोगी कहता है की वैद्य मेरे पैर में वेदना है, उसके बिना कहे जाना नहीं जा सकता है। बिना पूछे वेद्य स्वयं नहीं कह सकता है कि तेरे पैर में वेदना है। इसी प्रकार कल मैंने एक स्वप्न देखा। यह सुनकर के किस प्रकार का तथा क्या स्वप्न देखा इस प्रकार से प्रश्न होता है। बाघ का स्वप्न देखा यह उसका समाधान होता है। बाघ ने क्या किया इस प्रकार से बार-बार प्रश्न करने पर हम अन्य के स्वप्न के अनुभव के विषय में पूर्ण रूप से जान सकते हैं। कल में अच्छे से सोया ऐसा सुनकर शयन किस प्रकार का था, तथा क्या अनुभव किया इस प्रकार के प्रश्न कोई भी नहीं करता है। सुषुप्ति का अनुभव अत्यन्त सुखकर होता है। ये सभी जानते हैं। इसमें कुछ भी विशेष नहीं होता है।

कुमारो वा महाराजो वा महाब्राह्मणो वा अतिघ्नीमानन्दस्य गत्वाशयीत। (बृ-2.1.19)

सुषुप्ति में संसार नहीं होता है। बालक हो अथवा स्त्री, पुरुष, महाराज, दरिद्र कोई भी हो इन सभी में भेद के बिना सुख की सभी की वह सुख रूपी एकावस्था ही होती है। यहाँ का आनन्द सर्वश्रेष्ठ होता है। जिसमें दुःख की गन्ध भी नहीं रहती है।

सुषुप्ति कालीन अनुभव किस प्रकार का होता है इस प्रकार की जिज्ञास करने पर कहते हैं कि अज्ञानान्द के अनुभव की तरह। सोकर के उठे हुए पुरुष के वाक्य होते हैं कि सुख सो करके उठा हूँ। मुझे कुछ भी नहीं पता है। इसके द्वारा सुप्तोत्थिक की स्मृति को यह समझा जाता है कि सुषुप्ति में सुख तथा अज्ञान का अनुभव होता है। न कुछ अनुभव किया इस प्रकार की भी यह स्मृति होने योग्य ही है। सुप्तोत्थित का वाक्य स्मृति ही होती है। स्मृति अनुभवजन्या होती है। इस प्रकार से सुप्त को अज्ञानान्द का अनुभव होता है। इस प्रकार से स्वीकार करना चाहिए।

सुप्तोत्थितस्य सौषुप्ततमो बोधो भवेत् स्मृतिः।

सा चावबुद्धविषयावबुद्धं तत्तदा तमः॥ (पञ्चदशी-1.5)

17.13) कारणशरीर

अविद्या ही आत्मा का कारण शरीर होता है। इस कारण शरीर की असाधारणी अवस्था सुषुप्ति होती है। स्थूल जाग्रत के भान के समान ही कारण शरीर का सुषुप्ति में ही सम्यक् भान होता है। ब्रह्मज्ञान से अज्ञान का नाश होता है। शरीर का भी नाश होता है। इसलिए नाश के साम्य से अज्ञान का भी शरीर नाम होता है। स्थूल सूक्ष्म प्रपञ्चकारण कारणत्व होता है। जीव को स्वयं का ज्ञान नहीं होता है। यह ही जीव का अज्ञान होता है। इस अज्ञान से ही भ्रान्ति होती है। वह स्वयं को स्थूल देह के रूप में मानने लगता है। जिससे वह मैं पुरुष हूँ, स्त्री हूँ, तथा ब्राह्मण हूँ, इस प्रकार का मूढ विचार करता है। जिससे वह रागद्वेष वश भिन्न भिन्न कर्म करता है। उन कर्मों का फल स्वान्तकरण से युक्त होता है। उस फल के उपभोग के लिए बार बार जन्म सम्भव होता है। प्रत्येक जन्म में सूक्ष्म शरीर के आयतन के लिए स्थूल शरीर को स्वीकार करता है। इन सभी का कारण अज्ञान ही होता है।



ध्यान दें:

अवस्था त्रय विचार



ध्यान दें:

अज्ञान समष्टि के अभिप्राय से वन के समान एक ही होता है। तथा व्यष्टि के अभिप्राय से वृक्ष के समान अनेक होता है। व्यष्टि विशेष होता है तथा समष्टि सामान्य होता है। वस्तुतः अज्ञान एक ही होता है। वह ही प्रत्येक जीव में भिन्न भिन्न होता है। जीवगत नानात्व के रूप में भासमान अज्ञान समष्टि के अभिप्राय से एक ही होता है। समष्टि अज्ञानोपाहित चैतन्य ईश्वर होता है। ईश्वर ही इस समष्टि के अखिलकारणत्व से कारण शरीर होता है आकाशादि भी यहा पर उपरमण करते हैं। इस प्रकार से महासुषुप्ति तथा प्रलय होता।

व्यष्टि के अभिप्राय से अज्ञान अनेक होते हैं। व्यष्टिज्ञानोपाहित चैतन्य प्राज्ञ होता है। अहङ्कारादि का सुषुप्ति अवस्था में संस्कार विशेष से स्थित के कारणत्व से यह व्यष्टि कारण शरीर होता है। यह जगत् प्रपञ्च तथा स्वप्न प्रपञ्च नहीं होता है। सभी विषयों का उपरमत्व होने से यह सुषुप्ति के रूप में भी जाना जाता है।

17.14) सुषुप्ति में जगद् भान का अभाव

जाग्रत काल में स्थूल प्रपञ्च होता है। स्वप्नकाल में सूक्ष्मप्रपञ्च होता है। सुषुप्तिकाल में प्रपञ्च नहीं होता है। वेदान्त में मन से अतिरिक्त अविद्या नहीं होती है। इसलिए संसारबन्धकारणभूत अविद्या मन ही होता है। मन का सत्व होने पर देहादि में अभिमानरूप बन्धन होता है। मन के असत्व होने पर बन्धन नहीं होता है। इस प्रकार से मन के अन्यव्यतिरेक के द्वारा बन्धकारणत्व सिद्ध होता है। स्वप्न में मन के जागरण से जाग्रतवासनायुक्त मनस विजृम्भित प्रपञ्च का जीव को अनुभव होता है। स्वप्न के समान जाग्रत होने पर भी मन सभी का सर्जन करता है। इसलिए यह सब मन का विजृम्भण मात्र ही है

स्वप्नेर्थशून्ये सृजति स्वशक्त्या

भोक्तादि विश्वं मन एव सर्वम्।

तथैव जाग्रत्यपि नो विशेषः

तत्सर्वमेतन्मनसो विजृम्भणम्॥ (वि.चू. 172)

सुषुप्तिकाल में मन का लय सम्भव होने से मन के कारण भूत जगत् प्रपञ्च तथा स्वप्नप्रपञ्च नहीं होते हैं। कारण के अभाव में कार्य का भी अभाव होता है। मन का अस्तित्व जाग्रत तथा स्वप्न में ही होता है। तब ही प्रपञ्च का अनुभव होता है। इसलिए दृश्यमान प्रपञ्च मन से कल्पित ही होता है। सुषुप्ति में मन के विलय होने से मन होता ही नहीं है। सभी प्राणियों का यह एक अनुभव होता है कि सुषुप्ति में कुछ भी अवशिष्ट नहीं रहता है। मन के सत्व होने से स्वप्न तथ जाग्रत अवस्था में संसार की उपलब्धि होती है। मन के असत्व होने से सुषुप्ति में उसकी अनुपलब्धि होती है।

सुषुप्तिकाले मनसि प्रलीने

नैवास्ति किञ्चित्सकलप्रसिद्धेः।

अतो मनःकल्पित एव पुंसः

संसार एतस्य न वस्तुतोऽस्ति॥ (वि.चू. 173)

जाग्रत अवस्था में ही स्थूलशरीर का भान स्पष्ट होता है। स्वप्न में सूक्ष्मशरीर का भान स्पष्ट होता है। तथा सुषुप्ति में तो कारण शरीर का भान ही स्पष्ट रहता है। तथा अज्ञान ही कारण शरीर होता है।

अव्यक्तमेतत्रिगुणैर्निरुक्तं

तत्कारणं नाम शरीरमात्मनः। (वि.चू. 122)

सुषुप्ति में सभी इन्द्रियों की तथा बुद्धि की वृत्ति प्रलीन होती है। सभी इन्द्रियाँ बुद्धि तथा उनकी वृत्तियाँ वहाँ पर नहीं होती हैं। फिर भी वासनाओं का नाश तो नहीं होता है। वासनाएँ बीज रूप में

अवितिष्ठित रहती हैं। उनसे ही फिर जाग्रत् तथा स्वप्न की सृष्टि होती है। वासनाओं के नाश के अभाव से यह कारण शरीर के रूप में जाना जाता है।



पाठ सार

यहाँ पर जीवात्मा की तीन अवस्थाएँ प्रतिपादित की गई हैं। वे हैं जाग्रतावस्था, स्वप्नावस्था तथा सुषुप्ति अवस्था। जाग्रतावस्था में जीव का नाम वैश्वानर होता है। वह तब स्थूल विषयों का अनुभव करता है। इसलिए वह स्थूलभुक् होता है। बाह्यविषयों में प्रवृत्ति के कारण वह बहिष्प्रज्ञ होता है। स्वप्नावस्था में यह तैजस के रूप में होता है। वहाँ पर सूक्ष्मविषयों के अनुभव के कारण वह प्रविविक्तभुक् होता है। बाह्यप्रपञ्च के अनुभव के अभास से यह वह अन्तः प्रज्ञ भी होता है। सुषुप्ति अवस्था में आत्मा का प्राज्ञ इस प्रकार का नाम भी होता है। तब वह अज्ञानात्मक कारण शरीराभिमानी होता है। तब वह आनन्दमात्र का अनुभव करता है इसलिए आनन्दभुक् कहलाता है। जाग्रतकालीन स्थूलप्रपञ्च स्वप्नकाल में नहीं होता है। फिर भी उस वासनायुक्ति मनोवृत्तियों के कारण उसे सूक्ष्म प्रपञ्च का भान होता है। ये दोनों प्रपञ्च भी इस सुषुप्ति में नहीं होते हैं। तब आत्मा के साथ प्राज्ञ एकीभूत होता है। स्थूलात्मक जगत्प्रपञ्च का स्वप्नस्थप्रपञ्च का तथा सूक्ष्मप्रपञ्च का सुषुप्ति अवस्था में लय हो जाता है। इसलिए सुषुप्ति स्थूलसूक्ष्मलयस्थान वाली कही जाती है। जाग्रत अवस्था में स्थूल शरीर का स्वप्न में लिङ्ग शरीर का तथा सुषुप्ति में कारण शरीर का भान होता है।

आपने क्या सीखा

- वेदान्त का सामान्य परिचय
- अद्वैतवेदान्त शब्द के विशेषार्थ को जाना
- वेदान्त इतर विभागों का परिचय प्राप्त किया
- वेदान्तप्रतिपाद्य मुख्य विषयों को जाना
- शंकराचार्यादि आचार्यों का परिचय प्राप्त किया
- अवस्थात्रय के विषय में सामान्य बोध
- आत्मा का चतुष्पादत्व का सम्यक् अवगमन
- विश्व वैश्वानरादि स्वरूप ज्ञान



पाठान्त प्रश्न

1. स्वप्न किसे कहते हैं?
2. स्वप्नप्रपञ्च किस प्रकार का होता है?
3. तैजस किसे कहते हैं?
4. सूक्ष्मशरीर किसे कहते हैं?
5. अन्तः करण के चार प्रकार कौन-कौन हैं?



ध्यान दें:

अवस्था त्रय विचार



ध्यान दें:



पाठगत प्रश्नों के उत्तर 17.1

1. वेदान्त उपनिषद् प्रमाण तथा तदुपकारी शारीरिक सूत्रादि होते हैं।
2. दो प्रकार के।
3. उपनिषद्।
4. शङ्कराचार्य।
5. माध्वाचार्य।
6. रामानुजाचार्य।
7. जीव तथा ब्रह्म का ऐक्य।
8. तीन।
9. तीन।
10. अन्तः करणावच्छिन्न चैतन्य।



पाठगत प्रश्नों के उत्तर 17.2

1. इन्द्रियों के द्वारा अर्थोपलब्धि।
2. जाग्रत में।
3. वहाँ पर जो प्रमाणों के द्वारा अर्थ का निर्धारण करता है वह प्रमाता कहलाता है।
4. विश्व, तैजस, प्राज्ञ तथा ईश्वर इस प्रकार से चार पैर होते हैं।
5. वैश्वानर।
6. स्थूलशरीर।